ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2020; 6(9): 438-441
www.allresearchjournal.com
Received: 05-07-2020
Accepted: 09-08-2020

डॉ0 सुजीत कुमार
पिक्षक, श्री लीलाधर 2 उच्च विद्यालय, बेनीपट्टी, मधुबनी, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 सुजीत कुमार
पिक्षक, श्री लीलाधर 2 उच्च विद्यालय, बेनीपट्टी, मधुबनी, बिहार, भारत

भारत में प्रजामंडल आंदोलन का औपनिवेशिक शासक पर प्रभाव

डॉ0 सुजीत कुमार

संक्षिप्त सार
1920 ई0 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने नागपुर अधिवेशन में रियासतों के प्रति अपनी नीति की घोषणा करते हुए उनके शासकों से यह मांग की कि प्रजा को पूर्ण उत्तरदायी सरकार दी जाए। कांग्रेस में रियासतों की प्रजा की सदस्यता का प्रावधान था पर कांग्रेस भारतीय रियासतो के अंदरूनी मामलों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती थी। फिर भी व्यक्तिगत तौर पर या स्थानीय राजनीतिक संगठनों के रूप में राजनीतिक गतिविधियाँ शुरू करने की पूरी स्वतंत्रता थी। प्रजा में राजनीतिक चेतना जगाने में खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा, जामनगर, इंदौर, नवानगर तथा काठियावाड़ और दक्कन की रियासतों में प्रजा मंडलों का गठन हुआ।1921 ई0 के पश्चात भारतीय रियासतों में कांग्रेसी नेता व्यक्तिगत रूप से सक्रिय होने लगे, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने रियासतों के शासकों से मिलकर राष्ट्रवादी आंदोलन का दमन करना शुरू कर दिया था। लेकिन कांग्रेस नेतृत्व प्रजा मंडल आंदोलन में सक्रिय योगदान से कतराता रहा। इससे मामला और पेचीदा होता गया, क्योंकि प्रजा मंडल नेतृत्व अपनी समस्याओं के समाधान के लिए विस्तृत आधार और अखिल भारतीय सहानुभूति चाहता था। प्रजा मंडल आंदोलन को दबाने के लिए सर्वोच्च सत्ता ने राजाओं को पूरी आजादी दे दी थी।

संकेत शब्दः प्रजा मंडल, आंदोलन, रियासतों, राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय एवं स्वतंत्रता।

1. प्रस्तावनाः
भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के पश्चात भारतीय रियासतों और सामंतों पर शनैः शनैः ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता का दबाव बढ़ता गया। बढ़ती हुई ब्रिटिश शक्ति की तुलना में सब तरह से कमजोर और आपसी वैमनस्य के कारण एक–दूसरे से अलग–थलग पड़े हुए नरेशों को अंततः ब्रिटिश सर्वोच्चता कबूल कर लेनी पड़ी। इसके बाद ब्रिटिश हस्तक्षेप भी क्रमशः बढ़ता ही गया। इस प्रकार बिना युद्ध किए ही अंग्रेजों ने रियासतों के अधीन भारत के 45 प्रतिशत क्षेत्र और 24 प्रतिशत जनसंख्या पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। 19वीं शताब्दी के मध्य तक रियासतों पर अंग्रेजों का शिकंजा इतनी मजबूती से जकड़ गया कि उन्हें ब्रिटेन का 'अनौपचारिक साम्राज्य' कहना असंगत नहीं होगा।
जहां तक इन भारतीयों का प्रश्न है, अधिकांश रियासतों में निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन था और सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से ये रियासतें पिछड़ी हुई थीं। राजा–महाराजा और नवाब अपनी विलासिता के लिए राजकोष का मनमाना इस्तेमाल करते थे। भूमि–कर/भू–राजस्व काफी अधिक था। कानून के शासन का अभाव था और नागरिक अधिकारों का नामों–निशान तक नहीं था। इस गरीबी और पिछड़ेपन के लिए ब्रिटिश सरकार भी उतनी ही उत्तरदायी थी जितने कि ये राजा–महाराजा और नवाब। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की शुरूआत के पश्चात इन्हें ढाल की तरह इस्तेमाल किया गया। बीसवीं शताब्दी के प्रथम और द्वितीय दशक में कुछ क्रांतिकारी आतंकवादी ब्रिटिश भारतीय रियासतों में शरण लेने लगे और अपनी गतिविधियां वहीं से चलाने लगे। इसी दौरान रियासतों की प्रजा को राष्ट्रवादी आंदोलन को करीब से जानने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ। इसके साथ ही प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीय रियासतों की सेनाएं बाह्य विश्व के संपर्क में आई। ब्रिटिश सरकार की भारत में उत्तरदायी स्वशासन लागू करने की अगस्त घोषणा ने भी भारतीयों के आत्म–निर्धारण के अधिकार का वचन दिया था। भारतीयों में भी राजनीतिक आंदोलन शुरू हो गए जिनका लक्ष्य पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना था। रियासतों के शासकों ने ब्रिटिश सरकार के साथ मिलकर राष्ट्रीय गतिविधियों का दमन करने की नीति अपनाई जिससे प्रजा को एकजुट होने की प्रेरणा मिली।
1919 ई0 में भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का पदार्पण हुआ जो जन–साधारण की सहायता से राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम चलाना चाहते थे।

गांधीजी के व्यक्तित्व ने रियासतों के लोगों को भी प्रभावित किया। गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय स्वाधीनता संग्राम का आधार काफी व्यापक हुआ। भारतीय रियासतों की प्रजा–किसान, श्रमिक, छात्र और महिलाएँ बढ़–चढ़ कर स्वाधीनता संग्राम में हिस्सा लेने लगीं।

1920 ई0 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने नागपुर अधिवेशन में रियासतों के प्रति अपनी नीति की घोषणा करते हुए उनके शासकों से यह मांग की कि प्रजा को पूर्ण उत्तरदायी सरकार दी जाए। कांग्रेस में रियासतों की प्रजा की सदस्यता का प्रावधान था पर कांग्रेस भारतीय रियासतो के अंदरूनी मामलों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती थी। फिर भी व्यक्तिगत तौर पर या स्थानीय राजनीतिक संगठनों के रूप में राजनीतिक गतिविधियाँ शुरू करने की पूरी स्वतंत्रता थी। प्रजा में राजनीतिक चेतना जगाने में खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा, जामनगर, इंदौर, नवानगर तथा काठियावाड़ और दक्कन की रियासतों में प्रजा मंडलों का गठन हुआ।

1921 ई0 के पश्चात भारतीय रियासतों में कांग्रेसी नेता व्यक्तिगत रूप से सक्रिय होने लगे, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने रियासतों के शासकों से मिलकर राष्ट्रवादी आंदोलन का दमन करना शुरू कर दिया था। लेकिन कांग्रेस नेतृत्व प्रजा मंडल आंदोलन में सक्रिय योगदान से कतराता रहा। इससे मामला और पेचीदा होता गया, क्योंकि प्रजा मंडल नेतृत्व अपनी समस्याओं के समाधान के लिए विस्तृत आधार और अखिल भारतीय सहानुभूति चाहता था। प्रजा मंडल आंदोलन को दबाने के लिए सर्वोच्च सत्ता ने राजाओं को पूरी आजादी दे दी थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय रियासतों के राजा–महराजाओं ने ब्रिटेन को तन–मन–धन से पूरा सहयोग दिया पर प्रजा ने पूर्णरूपेण राजाओं और ब्रिटिश सरकार का साथ नहीं दिया। उनके अनुसार अगर भारतीय राजा विदेशों मे प्रजातंत्रा की स्थापना के लिए ब्रिटेन का साथ दे रहे हैं तो उन्हें चाहिए कि पहले अपनी–अपनी रियासतों में प्रजातंत्र की स्थापना करें जहाँ घोर निरंकुशता विद्यमान है।

1940 से 1947 ई0 के दौरान गांधीजी का प्रजामंडल आंदोलन पर पूरा नियंत्रण था और प्रजा मंडल आंदोलन ने अपना क्षेत्रीय स्वरूप खो दिया था। गांधीजी ने प्रजा की समस्याओं की ओर उतना ध्यान नहीं दिया, जितना कि वे राष्ट्रीय समस्याओं की ओर दे रहे थे। त्रावणकोर में प्रजा कांग्रेस से विमुख हो गई और कांग्रेस की लोकप्रियता घट गई। कांग्रेस का एक गुट साम्यवाद की ओर चल गया। इ0 एम0एस0 नम्बुदिरिपाद, के0 के0 वारियार, के0 सी0 जार्ज वगैरह अब ट्रेड यूनियन गतिविधियों में सक्रिय हो गए। केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटी में साम्यवादी गुट और कांग्रेस गुट में मतभेद बढ़ता गया। मार्च 1944 ई0 में विधायिका को भंग कर दिया गया।

2. पूर्व अध्ययनों की समीक्षाः

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा के क्रम में विभिन्न आचार्यों द्वारा लिखित पुस्तकों का अवलोकन किया गया है जिसमें :

ए. आर. देशाई (1959) [1] द्वारा लिखित पुस्तक में दर्शाया गया है कि 1937–39 के मध्य किसान आंदोलनों की आवृति बहुत बढ़ गयी। कांग्रेसी सरकारों के सहयोगात्मक रवैये के कारण किसानों ने तेजी से अपनी मांगे उठानी प्रारंभ कर दीं। इस अवधि में जनसभायें, प्रदर्शन, धरने आदि आयोजित किये गये तथा गांवों में भी किसान आंदोलनों का प्रसार किया गया।

बिपिन चन्द्र एवं अन्य (1972) [3] द्वारा लिखित पुस्तक में यह आंदोलन बंगाल के सबसे प्रमुख कृषक आंदोलनों में से एक था। 1940 के लगान आयोग द्वारा की गयी सिफारिश के अनुसार, इस आंदोलन में मांग की गयी कि फसल का दो–तिहाई हिस्सा बर्गदारों (किसानों) की दिया जाये। यह आंदोलन बटाईदारों द्वारा जोतदारों के विरुद्ध चलाया गया था। इस आंदोलन में सबसे मुख्य भूमिका बंगाल किसान सभा की थी। इस सभा के नेतृत्व में सभाओं एवं प्रदर्शनों का आयोजन किया गया तथा तिभागा चाई (हमें दो–तिहाई भाग चाहिये) एवं इकलाब जिंदाबाद जैसे नारे लगाये गये।

ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद (1986) [5] द्वारा लिखित पुस्तक में पंजाब में हुये प्रारंभिक किसान आंदोलनों में पंजाब नौजवान भारत सभा, कीर्ति किसान दल, कांग्रेस एवं अकाली दल की मुख्य भूमिका थी। 1937 में पंजाब किसान समिति ने किसान आन्दोलन के संबंध में नये दिशा–निर्देश जारी किये। इस आंदोलन का मुख्य निशाना पश्चिमी पंजाब के जमींदार थे, जिनकी शक्ति यूनियनवादी सरकार के गठन के बाद काफी बढ़ गयी थी। इस आंदोलन का प्रमुख कारण अमृतसर एवं लाहौर में भू–राजस्व में वृद्धि, मुल्तान एवं मांटगोमरी में सिंचाई कर में वृद्धि तथा निजी ठेकेदारों द्वारा नये टैक्स लगाया जाना था। यहां किसानों ने अपनी मांगों के समर्थन में हड़तालें कीं तथा अंत में वे रियायत प्राप्त करने में सफल रहे।

राजेन्द्र प्रसाद (1949) [7] द्वारा लिखित पुस्तक में 1935 में प्रांतीय किसान सभा ने जमींदारों के उन्मूलन का प्रस्ताव पारित किया। बकाश्त जमीन की वापसी के लिये जब इन्होंने आंदोलन तेज किया, तब कांग्रेस सरकार से इस आंदोलन के मतभेद भी हो गये क्योंकि वह उस दौर में जमींदारों को नाराज कर राष्ट्रीय आंदोलन में बाधायें नहीं खड़ी करना चाहती थी। आंदोलन का मुख्य स्वरूप था– सत्याग्रह तथा जबरदस्त बुआई और फसल कटाई। इस दौरान किसानों के जमीदारों के साथ बड़े पैमाने पर संघर्ष भी हुये।

मृदुला मुखर्जी (2004) [6] द्वारा लिखित पुस्तक में इन देशमुखों ने किसानों तथा खेतिहर मजदूरों का भरपूर शोषण किया तथा इस क्षेत्र में इनके अत्याचारों की एक बाढ़ सी आ गयी। सामंती दमन तथा जबरन वसूली स्थानीय किसानों के भाग्य की नियति बन गये। अपने प्रति किये जा रहे अत्याचारों से तंग आकर किसानों एवं खेतिहर मजदूरों ने शोषकों के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया। कुछ समय पश्चात स्थानीय कम्युनिस्ट, मझोले कृषक तथा कांग्रेस संगठन भी इस अभियान में शामिल हो गये। इस आंदोलन में विद्रोहियों ने शोषकों के विरुद्ध गुरिल्ला आक्रमण की नीति अपनायी। युद्ध के दौरान कम्युनिस्ट नेतृत्व वाले गुरिल्ला छापामारों ने आंध्र महासभा के सहयोग से पूरे तेलंगाना क्षेत्र के गांवों में अपनी अच्छी पैठ बना ली।

3. अध्ययन पद्धति :

यह शोध आलेख मुख्य रूप से वर्णन एवं विश्लेषणात्मक एवं ऐतिहासिक आलोचनात्मक अध्ययन पद्धति पर आधारित है। वर्त्तमान अध्ययन ब्रिटिश राज्य के विरूद्ध भारत में प्रजामंडल –आंदोलन के विविध पक्षों के अन्वेषण से संबंधित है अतः यह शोध आलेख मुख्य रूप से द्वैतियक स्रोत पर आधारित है। इस अध्ययन के लिए मूल अध्ययन स्रोत पत्र–पत्रिकाओं एवं दस्तावेज तथा विभिन्न आचार्यों द्वारा सम्पादित पुस्तकों द्वारा लिया है।

निरंकुश राज्यशासनः

कुछ रियासतों जैसे त्रावणकोर, कोचीन, मैसूर और पोरबंदर को छोड़कर अधिकतर रियासतें निरंकुश राज्यशासन की हिमायती थीं चाहे वे हैदराबाद, कश्मीर या पटियाला जैसी बड़ी रियासतें हों या बिहार, उड़ीसा, मध्य भारत और हिमाचली राज्यों जैसी छोटी लोकप्रिय प्रतिनिधियों का राज्यशासन में कोई दबदबा नहीं था। फिर भी, त्रावणकोर में 1921 ई से, पुडुकोट्टाई में 1924 ई0 से और कोचीन में 1925 ई0 से विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्य बहुमत में थे। इन रियासती वैधायिक निकायों और 1919 ई0 के ब्रिटिश प्रांतों की मौंटफार्ड परिषदों में एक प्रकार की समानता थी। हैदराबाद, ग्वालियर, इंदौर, बड़ौदा और बीकानेर में भी

विधान परिषदों या समितियाँ थीं पर इनकी बैठकें अनियमित थीं और ये परामर्शवादी संस्थाएं थी।

कुछ गणमान्य राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं ने,जो भारतीय रियासतों की समस्याओं के प्रति संवेदनशील थे, बंबई में दिसंबर 1927 ई0 में एक केन्द्रीय संस्था ऑल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फरेंस की स्थापना की, जिससे रियासती आंदोलन को नेतृत्व प्रदान किया जा सके। इसमें बलवंतराय मेहता, मणिलाल कोठारी, जी0 आर0 अभ्यंकर आदि ने सक्रिय भूमिका निभाई। इस संस्था की स्थापना का मुख्य कारण यह था कि सर हारकॉर्ट बटलर की अध्यक्षता में 16 दिसम्बर 1927 को इंडियन स्टेट्स कमेटी की बहाली हुई थी। ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 के प्रथम सत्र में 700 से भी अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिसमें इस संस्था के लक्ष्य और उद्देश्य के बारे में घोषणा की गई। यह संस्था रियासतों की सरकारों को प्रजा की सामूहिक आकांक्षाओं के अनुरूप प्रशासन में सुधार के लिए प्रभावित करेगी। ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 ने लोगों के आत्म–निर्णय के अधिकार यानी सरकार के स्वरूप निर्धारण और प्रशासन मे निर्वाचित प्रतिनिधियों के शामिल होने पर काफी बल दिया। इसका कहना था कि प्रतिनिधि सरकार को विधायिका के अधिकार हों ताकि सामान्य प्रशासन और वित्त पर इसका नियंत्रण हो। राजा का निजी व्यय और रियासत के राजस्व के बीच अलगाव हो। एक स्वतंत्र और सर्वोच्च न्यायपालिका का गठन हो जो कार्यपालिका से अलग हो। स्वराज्य पाने के लिए भारतीय रियासतों और ब्रिटिश सरकार के बीच सांविधानिक संबंध हो। रियासतों के लोगों को भारत के संविधान बनने पर, एक सही स्थान और प्रभावी आवाज मिलनी चाहिए।

अतः ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 की स्थापना ने रियासतों की प्रजा को शासकों के निरंकुश शासन के खिलाफ एकजुट होने में मार्ग–दर्शन किया। प्रजा मंडल आंदोलन दो समानांतर मुद्दों को लेकर चला :

(क) स्थानीय सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक आंदोलन जो उत्तरदायी सरकार की मांग करे और

(ख) ब्रिटिश प्रांतों में कांग्रेस आंदोलन का विस्तार करे जो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए साम्राज्यवादियों के खिलाफ चल रहा था। ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 को इंडियान स्टेट्स कमेटी ने मान्यता देने से इंकार कर दिया, क्योंकि कमेटी के अनुसार भारतीय रियासतों का प्रतिनिधित्व कानूनन और राजनीतिक रूप से राजा करते थे। कमेटी ने ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 को प्रश्न–सूची देने से भी इनकार कर दिया। अंततः कमेटी ने ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 को एक ज्ञापन देने को कहा जिसमें सभी मामलों पर उनकी राय प्रकट की गई हो। 11 जुलाई, 1928 ई0 को ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 का एक प्रतिनिधिमंडल इंग्लैंड गया जिसमें दीवान बहादुर रामचंन्द्र राव (अध्यक्ष), प्रोफेसर जी0 आर0 अभ्यंकर, अमृतलाल डी0 सेठ और पी0 एल0 चुदगर शामिल थे। इंग्लैंड के लोगों से सहायता प्राप्त करने के लिए जनमत तैयार करना उनका उद्देश्य था। प्रतिनिधिमंडल ने इंग्लैंड पहुंच कर यह विचार प्रकट किया कि वे ये नहीं चाहते कि भारतीय रियासतों के शासकों को समाप्त कर दिया जाए बल्कि वे वहां सांविधानिक राजतंत्रा ही चाहते है। राजय प्रशासन में सुधार के लिए भी आवश्यक सुझाावों को ज्ञापन के द्वारा ब्रिटिश नागरिकों के सामने प्रस्तुत किया गया। सर्वोच्च सत्ता के योगदान की चर्चा करते हुए प्रतिनिधिमंडल ने कहा कि अच्छी सरकार और प्रजा की भलाई ब्रिटिश सरकार का उत्तरदायित्व हैं। अतः ब्रिटिश सरकार अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह तभी कर पाएगी जब वह रियासत के शासकों को उसके लिए प्रेरित करे कि वे प्रजातांत्रिक आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन चलाएं। प्रतिनिधि मंडल ने रेजीडेंटों के द्वारा रियासतों के आंतरिक मामलों में हस्तखेप की तीव्र आलोचना की। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से एक राजकीय घोषणा की मांग की जिसमें उत्तरदायी संविधानिक सरकार के विचार को मान्यता दी जाए। प्रजा की दशा की सही स्थिति से अवगत होने के लिए एक 'राजकीय आयोग' की बहाली हो। प्रतिनिधिमंडल भारतीय रियासतों की प्रजा की समस्याओं को ब्रिटिश संसद के सम्मुख प्रस्तुत करने में सफल तो हो गया पर इससे कोई प्रभावी परिणाम न निकला।

पंजाब रियासती प्रजा मंडल की स्थापना जुलाई 1928 ई0 में हुई जो 1921–24 ई0 में हुए शक्तिशाली गुरूद्वारा सुधार आंदोलन से प्रभावित हुआ था। हालांकि भारत की अन्य रियासतों में प्रजा मंडल आंदोलन वहां के लोगों के द्वारा, रियासतों से अन्यत्र रहकर शुरू किया गया था पर पंजाब में यह बात नहीं थी। ये लोग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वारा चलाए गए स्वाधीनता संग्राम से भी प्रभावित थे। अतः इन मामलों में पूर्वी पंजाब रियासती आंदोलन अन्य भारतीय रियासतों के प्रजा मंडल आंदोलनों से भिन्न था। 1928–38 ई0 के प्रथम चरण में प्रजा मंडल आंदोलन एक सिख किसान आंदोलन था जिसका लक्ष्य किसानों की समस्याओं को सुलझाना था। उनकी मांगों में भू–राजस्व एवं अन्य करों के बोझ को कम करना, ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूल एवं अस्पताल खुलवाना, सड़कों का निर्माण, ग्रामीणों को कर्ज के बोझ से राहत दिलवाना इत्यादि शामिल थे। अन्य मांगों मे उत्तरदायी सरकार की स्थापना और निरंकुश शासन का अंत शामिल थी। इसमें अधिकतर अकाली सक्रिय थे। किसानों और अकालियों को छोड़कर अन्य कोई भी इसमें शामिल नहीं हुआ। शैक्षिक दृष्टिकोण से पिछड़ा रहने के कारण शहरी बुद्धिजीवियों का पूर्वी पंजाब में अभाव था । व्यापारी और अधिकारी वर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए शासकों के साथ थे। फरीदकोट, मालेर कोटला और कालसिया रियासतों में भी प्रजा मंडल आंदोलन शुरू हो गया था। पूर्वी पंजाब में राजनीति ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर आई जिसमें सिख किसानों का मुख्य योगदान था। पाटियाला में प्रजा मंडल आंदोलनों का मुख्य शत्रु महाराजा भूपिंदर सिंह था।

रियासत के लोगों में धीरे–धीरे उग्रता आनी शुरू हो गई थी। 1935 ई0 में पंजाब के लोहानु क्षेत्रा में ऊंटों पर कर लगाए जाने के विरोध में आंदोलन करने वालों पर गोली चलाई गई। किंतु शासकों के खिलाफ जन–उभार को दबाया नहीं जा सका। 1935 ई0 के बाद पंजाब रियासती प्रजा मंडल आंदोलन में फूट पड़ने लगी। ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 के लुधियाना अधिवेशन में साम्यवादी छा गए। साम्यवादियों के नेतृत्व में शीध्र ही किसान आंदोलन फैलने लगा।

हालांकि प्रजा मंडल आंदोलन राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम से स्पंदित होता था और ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 का नेतृत्व कांग्रेस जनों के हाथों में केंद्रित था, पर कांग्रेस इन रियासतों में सक्रिय भूमिका निभाना नहीं चाहती थी। कांग्रेस ने प्रजा के प्रति अपनी सहानुभूति और सहायता जाहिर की पर इस बात पर उसने कदापि ध्यान नहीं दिया कि वह भी उन्हीं अधिकारों के लिए ब्रिटिश भारत में सरकार के खिलाफ लड़ रही है। ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 को गोलमेज सम्मेलनों में प्रतिनिधि भेजने नहीं दिया गया, पर कांग्रेस के अंदर ही उनसे सहानुभूति रखने वाले नेताओं ने उनकी बातें सम्मेलनों में पेश कीं। आधिकारिक तौर पर ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 को कांग्रेस का तब समर्थन मिला जब कांग्रेस ने संघीय प्रणाली में रियासत की प्रजा के प्रतिनिधित्व के अधिकार पर जोर दिया। लेकिन यह रियासती शासकों को मंजूर नहीं था। ऐसे भी उनका ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 से संबंध एवं अन्य स्थानीय संस्थाओं के प्रति रवैया अमैत्रीपूर्ण था। यह इस बात से प्रमाणित होता है कि रियासती प्रजा का सम्मेलन रियासतों में नहीं बल्कि ब्रिटिश भारत के समीपवर्ती जिलों में होता था। यहां तक कि ब्रिटिश सरकार की भी इच्छा थी कि प्रजा की संस्थाओं को विकसित होने में अरचनें पैदा की जाएं। अतः इन संस्थाओं की कार्यक्षमता को मान्यता नहीं प्रदान की गई, जिससे प्रजातंत्रीकरण की प्रक्रिया को धक्का लगा।

भारत सरकार अधिनियम 1935 द्वारा सांविधानिक रूप से भारतीय रियासतों को ब्रिटिश भारत में जोड़ने की योजना थी ताकि भारत को एक संघीय स्वरूप प्रदान किया जा सके। रियासतों से चुने गए प्रतिनिधियों की संख्या संघीय विधानमंडल की कुल संख्या की एक तिहाई रखी गई थी। ब्रिटिश सरकार की यह चाल थी कि रियासतों के प्रतिनिधि चुनने की अधिकार राजा–महाराजाओं को दिया जाए ताकि उनके ऐजेंटों को राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के खिलाफ इस्तेमाल किया जा सके। कांग्रेस ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 तथा अन्य जन–संगठनों ने यह चाल समझकर रियासतों का प्रतिनिधित्व करने के लिए जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों की मांग रखी । प्रजा भी लोकतांत्रिक सरकार चाह रही थी। लेकिन रियासतों के शासकों ने 1935 ई0 के कानून के संघीय हिस्से के कार्यान्वित होने में रोड़े अटकाए।

जुलाई 1931 ई0 में कश्मीर में सामंती प्रथा और निरंकुशता के खिलाफ आंदोलन होने शुरू हो गए। कश्मीर में बहुसंख्यक मुस्लिम थे और शासक हिंदू था। अतः सांप्रदायिकता की छाया कभी–कभी आ जाती थी। शेख अबदुल्ला और अन्य मुस्लिम स्नातकों के द्वारा एक शक्तिशाली नेशनल कॉन्फरेंस आंदोलन की शुरूआत हुई। 21 जुलाई 1931 ई0 को जन–साधारण के द्वारा श्रीनगर जेल पर आक्रमण हुआ और गोली चलने से 21 लोग मारे गए। परिणामस्वरूप, सांप्रदायिक दंगे शुरू हो गए। सरकार की दमन नीति से तंग आकर सितम्बर 1931 ई0 में लोगों ने पुलिस पर आक्रमण शुरू कर दिया। महाराजा को सहायता देने के लिए ब्रिटिश फौज का हस्तक्षेप हुआ। जम्मू में मीरपुर, कोटली और रजौरी ताल्लुकों में सूदखोरों के खिलाफ दंगे हुए । 12 नवम्बर को सरकार ने 'शिकायत पूछताछ आयोग' का गठन किया, जिसमें गैर–अधिकारी लोग भी शामिल थे। अप्रैल 1932 ई0 में आयोग के द्वारा कुछ छूटें दी गई। मुस्लिमों में शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया गया। उन धार्मिक भवनों, जिनपर सरकार का कब्जा था वापस किया गया। चराई–कर को कुछ समय के लिए निलंबित किया गया। राज्य के द्वारा काम पर लगाए गए श्रमिकों का बकाया भुगतान किया गया। अक्टूबर 1932 ई0 में शुरू हुए मुस्लिम कॉन्फरेन्स को नेशनल कॉन्फरेन्स में बदल दिया गया। इसके नेता शेख अबदुल्ला ने निरंकुशता के खिलाफ लड़ने वाले अन्य नेताओं से अपने संबंध पहले ही बना लिए थे, जिनमें जम्मू के नेता पी0 एन0 बजाज भी थे।

1935–39 ई0 के दौरान ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 ने स्थानीय संस्थानों के माध्यम से अपनी पकड़ मजबूत करनी चाही। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान रियासतों के कार्यकर्त्ता ब्रिटिश भारत के नेताओं के संपर्क में आए जिससे उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता और सूझ–बूझ में परिपक्वता आई। जुलाई 1936 ई0 में ए0 आई0 एस0 पी0 सी0 वैध और शांतिपूर्ण तरीकों से भारतीय रियासतों की प्रजा के लिए पूर्ण प्रजातांत्रिक उत्तरदायी सरकार प्राप्त कराने के लिए प्रयासरत रहा। यह जब स्थानीय संस्थाओं के गठन में लगा हुआ था तो उसी दौरान कुछ रियासतों की प्रजा ने आंदोलन में जोर–शोर से हिस्सा लेना शुरू कर दिया। लेकिन इन आंदोलनों में अपरिपक्वता थी और कुशल नेतृत्व का अभाव साफ दृष्टिगोचर होता है।

प्रजा मंडल आंदोलन का स्वरूप उत्तर एवं दक्षिण भारत में अलग–अलग था। उत्तर भारत में प्रजा मंडल आंदोलन आर्थिक कारणों को लेकर शुरू हुआ। अत्यधिक भू–राजस्व, बेगार एवं अन्य करों के खिलाफ लोग आवाज उठाने लगे। ज्यादा भू–राजस्व और विभिन्न प्रकार के कर देने के परिणामस्वरूप देशी रियासतों में भुखमरी और अकाल का वातावरण था। सामंती शासन–व्यवस्था की विकृतियों और राजाओं के निजी आचरण ने आग मे घी का काम किया। दूसरी ओर दक्षिण भारतीय रियासतों में आंदोलन दो समानांतर उद्देश्यों को लेकर शुरू हुआ– (क) स्थानीय सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन के रूप में जिसकी मांग उत्तरदायी सरकार की स्थापना थी और (ख) साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ भारतीय स्वतंत्राता संग्राम के विस्तार के रूप में, जिसका लक्ष्य रियासतों की स्वतंत्रता प्राप्ति था। खासकर मैसूर, त्रावणकोर और कोचीन में प्रजा मंडल आंदोलन ने प्रजातांत्रिक स्वरूप दर्शाया। हैदराबाद और कश्मीर जैसी रियासतों के शासकों ने प्रजा मंडल आंदोलन पर सांप्रदायिक होने का इल्जाम लगाया।

4. निष्कर्ष :

प्रजा मंडल आंदोलन का सामाजिक जनाधार काफी व्यापक था। समाज के सभी शोषित वर्गों/लोगों ने आंदोलन में भाग लिया। आंदोलन का नेतृत्व शिक्षित मध्य वर्गीय नेताओं के द्वारा किया गया चाहे वे कांग्रेसी विचारधारा के हों या सामाजवादी या साम्यवादी नेता। प्रजा मंडल नेतृत्व ब्रिटिश सरकार और भारतीय शासक दोनों के खिलाफ था और वह प्रजा को उनके चंगुल से बचाना चाहता था। चाहे नेताओं की निजी विचारधारा जो भी हो। प्रजा मंडल आंदोलन के दौरान कांग्रेस की दोहरी नीति के कारण साम्यवादी और समाजवादी गुट कांग्रेस से अलग हो गए। कांग्रेस अहिंसक जनांदोलन की समर्थक थी पर वामपंथी गुट हिंसात्मक रवैया अपनाने से चूके नहीं। यही कारण था कि हैदराबाद, कोचीन और त्रावणकोर में वामपंथी गुटों की स्थिति बेहतर थी। पंजाबी रियासतों मे भी वामपंथी गुट की स्थिति मजबूत थी। प्रजा मंडल आंदोलन भारतीय रियासतों में भारतीय स्वाधीनता संग्राम का विस्तृत रूप था जिससे स्वाधीनता संग्राम को और दृढ़ता मिली। लेकिन कांग्रेस नेतृत्व के अंतर्गत चल रहे स्वाधीनता संग्राम से सहानुभूति के अलावा प्रजा मंडल आंदोलन को कुछ भी न मिला, हालाकि व्यक्तिगत रूप में कांग्रेसी नेता अवश्य नेतृत्व प्रदान करते रहे। त्रिपुरी अधिवेशन के बाद स्थिति में बदलाव आया। 1940 के दशक के प्रारंभ से ही प्रजा मंडल आंदोलन ने कांग्रेस के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम से अपनी पहचान बना ली, जिससे दोनों की स्थिति मजबूत हुई। स्वतंत्राता प्राप्ति के बाद भारतीय प्रांतों के अलावा भारतीय रियासतों के लोगों की आशाएं और आकांक्षाएँ भी फलीभूत हुई।

5. सदंर्भ सोतः

1. Desai AR. Social Background of Indian Nationalism, Popular Prakashan, Bombay, 1959, 232-233.
2. Chandra Bipan. The Rise and Growth of Economic Nationalism in India, Economic Policies of Indian National Leadership, 1880-1905, Har-Anand Publication, New Delhi, 2010, 36-48.
3. Chandra Bipan, Tripathy Amlesh, Barun. De, Freedom Struggle, National Book Trust, New Delhi, 1972, 39-42.
4. Sarkar Sumit. Modern india, 1885-1947, Association of Asian Studies, Delhi, 1985, 40-48.
5. Namboodripad. E.M.S., History of India's Freedom Struggle, Social Scientist Press, Trivandrum, 1986, 52-72.
6. Mukhetjee Mridula. Peasants in India's Non-violent Revolution: Practice and Theory, Sage Publication, New Delhi, 2004, 354.
7. Prasad Rajendra. Satyagraha in Champaran, Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1949, 201-2.s